स्वरोजगार

या

युवा स्वरोजगार योजना

आज बेरोजगारी बढ़ती हुई महंगाई की तरह एक भयानक स्वस्या है। जीवन-स्तर लगभग तय हो चुका है। लोकतं9 ने आम आदमी को स्वप्नों से संबंध कियाहै, उनमें परिकल्पनाओं का स्वर्ग महाकाया और जीने की महती अकांक्षांए पैदा की है। उसके लिए रोजगार चाहिए। नई पीढ़ी तो स्वप्नों की पीढ़ी है जो बहुत कुछ करना चाहती है। उसमें जोश है, कुछ कर पाने की तमन्ना है ओर शक्ति है। जरा कल्पना कीजिए जीवन के सुंदर स्वप्न बुनने वाला जब बेकारी की दहलीज पर खड़ा सूखे आसमान पर चटकती धरती की ओर देखेगा तब उसके अंतर्मन पर क्या बीत रही होगी। उसके सृजित आत्मविश्वास, उम्मीद और स्वप्नों पर क्या बीत रही होगी। क्या उसके सामने स्याहा अंधेरा समुद्र की तरह उछाले नहीं ले रहा होगा।

वह बराबर अपने से प्रश्न करता होगा कि सोलह-सत्रह वर्ष अध्ययन की भेंट क्यों किए? क्यों उसने जीने के स्वप्न बनें? कौन है उसके लिए जिम्मेदार? अब वह क्या करे? कौन सी दिशा की ओर आगे बढ़े। चारों तरफ 'नो वेकेंसी' की तख्ती लटकी हुई है। समाज को उसकी जरूरत नहीं है। राज्य को उसकी जरूरत नहीं है परिवार के लिए वह भार है। उसकी कितनीदयनीय स्थिति है। उसी योज्यता, क्षमता, शक्ति, सूझबूझ और अक्ल सब धराशायी हो चुकी है। वह निकम्मा है। वह शक्तिहीन है, वह विवेकहीन है और वह अपाहित है। सारी दुनिया उसकी शत्रु है। वह किसी भयावह षडय़ंत्र में फंस चुका है। उसे षडय़ंत्र में फंसाया गया है। फंसाने वाला कौन है? यहां उसका संशकित मन और परास्त बुद्धि अपने शत्रु को तलाश करने का काम शुरू करती है। अब उसकी अपनी सारी शक्ति शत्रु को तय करने में लग जाती है।

महत्वाकांक्षा और स्वप्नों को संजोए नवयुवक को अचानक जब तपती हुई रेतीली धरती पर अकेला छोड़ दिया जाता है तब वह आक्रोश, आशंका, अंनस्तित्व, वर्जना, कुंठी आदि के दलदल में फंसने लगता है।

मैं भी बराबर इन्हीं परिस्थितियों से गुजरने लगा था, मेरे सामने अंधेरा था बेकारी के दैतय की छोया मुझे या तो निगल जाने का प्रयास कर रही थी अथवा वह मुझे अपराध की दुनिया में धकेल देना चाहती थी। धनहीन जीवन कैसा नरक है यह वही जान सकता है जिसने उसे भोगा है। धन नहीं तो कुछ नहीं है। जीवन निस्सार है। स्वंय उस व्यक्ति को अपने जीवन से घृणा होने लगती है। जटिल आक्रोश उसे नास्तिक बना डालता है और वह सोचने लगता है कि वह किसी पूर्व नियोजित षडय़ंत्र का शिकार हुआ है।

नौकरी कहीं मिली नहीं। सडक़ इंस्पैक्टरी करते-करते मन झुंझला उठा। करूंग तो क्या करूं? केसे करूं? जी मं आया डिग्री को फाड़ दूं और अपराध की दुनियां में उतर जाऊं। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरे से कम योज्यता रखने वाले कैसे नौकरी पाकर मौजू छान रहे हैं। उनके यहां ऊपरी आमदनी से आनंद हो रहा है। घूस नाम से उसका मन विद्रोही हो उठाता था उसकी मुट्ठियां तन जाती थी।

तभी मेरा परिचय बैंक मैनेजर दुआ से हो गया वे मेरे मित्र बन गए। वह मुझे हतोत्साह देखकर एक दिन कहने लगे, मित्र यदि तुम बुरा नहीं मानों तो एक बात कहूं। मैंने हां कर दी। उन्होंने मेरे सामने एक प्रस्ताव रखा कि मैं कोई काम शुरू कर दूं। ्रश्न उठा कि क्या काम? जहां बैंक मैनेजर रहता थाख् वहां नई कॉलोनी अभी बस ही रही थी कि मैनेजन ने मुझे सुझाव दिया कि वहां मैं जनरल स्टोर की दुकान खोल लूं। पहले मैं चौंका, मैंने उनकी ओर घूर कर दोख। आखिर मैंने प्रथम श्रेणी में बी.कॉम. किया था। वह दुकान किस लिए? क्या जनरल स्टोर खोलने के लिए किया था। मैं बार-बार यह सोचता थाऔर हर बार झुंझलाहट से भर उठता था।

कब तक उनके प्रस्ताव को टालता? मेरे सामने और कोई रास्ता भी नहीं था। मैनेजर मित्र, मुझे बैंक से ॠण दिलवा रहे थे। अंततोगत्व मुझे उनकी बात माननी पड़ी। मैंने विक्रम जनरल स्टोर के नाम से दुकान खोल दी। हारे मन से दुकान शुरू की। मैं मन ही मन अपनी इस मूर्खता पर लानत भेजता रहा।

समय बीतता गया। पता ही नही चला कि उम्दा वस्तु और उचित दाम का जादू कॉलोनी वालों को इतना मोह जाएगा कि छह-सात माह में दो हजार मासिक आदनी होनी लगेगी अब मेरे मन में दुकान के प्रति झुकाव पैदा हुआ। मैं खरीददारी का रुख समझकर उनके अनुसार कार्य करने लगा। मेरी समझ में अब उपभोक्ता ही प्रकृति आने लगी थी। उपभोक्ता संस्कृति को मैं समझने लगा। फलत: दुकान चल निकली।

मेरी समझ में बेकारी की समस्या का हल आ गया। हम क्यों नौकरी के पीछे दौड़े? क्यों नहीं स्व-रोजगार की ओर कदम बढ़ांए। स्व-रोजगार का यह प्रयास मुझ में नई शक्ति भरने लगा। मैं फिर से अपने में ताजगी का अनुभव करने लगा। मेरे में न अब कुंठा रही और न फिजूल का आक्रोश। आज नौकरी के प्रति लोगों में पहले जैसा झुकाव नहीं रह गाय। शिक्षित व्यक्ति की यह समझ में आने लगा कि वह प्राप्त शिक्षा का अपने व्यवसाय या कार्य में प्रयोग कर खासा लाभ उठा सकता है। जो निस्संदेह नौकरी की अपेक्षा कालांतर में अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है।